प्रत्येक बच्चे को स्कूल में लाना

शिवानी तनेजा

जब मैंने 1997 में काम करना शुरू किया तो सपना था कि सभी बच्चों को स्कूल में होना चाहिए, क्योंकि मेरा मानना था कि यह विचार एक समतापूर्ण दुनिया के विज़न से सीधे जुड़ा हुआ है। मुझे यक़ीन है कि हममें से कई लोगों ने इस दिशा में काम किया है। चाहे वह राज्य हों, समुदाय हों या माता-पिता हों, हम सभी इस बात पर विश्वास करते हैं और इस आधार पर कार्य करते हैं कि स्कूली शिक्षा आवश्यक होने के साथ-साथ उत्पादक भी है। लेकिन जैसे-जैसे हम एक सरल अल्पवयस्क से एक समीक्षात्मक चिन्तन करने वाले वयस्क (हमारी अपनी स्कूल शिक्षा के माध्यम से तो ऐसा बनने की सम्भावना नहीं है!) के रूप में बड़े होते हैं तो एहसास होता है कि यह बात तो सच्चाई से बहुत दूर है। कुछ सवाल उठते हैं जिनका परीक्षण करने के लिए कक्षा से परे जाना पड़ सकता है : क्या शिक्षा केवल औद्योगिक दुनिया और आधुनिक सभ्यता के लिए एक उपकरण मात्र है? क्या हम सभी लिंग, धर्म, जाति और वर्ग में समानता की बात सीखते हैं और संवैधानिक मूल्य विकसित करते हैं, या वास्तव में इसका उल्टा होता है और इस व्यवस्था के माध्यम से मज़बूत होता है? क्या यह शिक्षा एक टिकाऊ दुनिया का निर्माण करेगी?

जब हम देखते हैं कि इस व्यवस्था के *उत्पाद* क्या करने में सक्षम हैं; या जब हम तथाकथित सभ्य दुनिया के कामकाज के तरीक़े को देखते हैं तो यह प्रश्न, यह शंकाएँ बनी रहती हैं। लेकिन इस स्थिति में भी, कक्षा में काम करने वाले शिक्षकों के रूप में अपनी सीमित भूमिका में, हम अपने बच्चों के लिए व्यवस्था में बदलाव की अपार सम्भावनाएँ देख सकते हैं।

कुछ आवश्यक बातें

प्रेम और स्नेह

दो इन्सानों के बीच की अन्तःक्रिया एक सकारात्मक और सक्षम करने वाला अनुभव तभी हो सकती है जब दोनों के बीच स्नेह हो। हाशिए पर रहने वाले बच्चों को शायद केवल अपने परिवार और समुदाय के लोगों के एक छोटे से दायरे में ही प्यार किया जाता है, उनकी ओर देखकर मुस्कराया जाता है। दुकानों में या सड़कों पर उन्हें देखकर कोई नहीं मुस्कराता। उनका रंग, उनका वर्ग, उनका धर्म या समुदाय, उनका रूप – उनके साथ भेदभाव करने के लिए पर्याप्त है। इसलिए, एक शिक्षक के रूप में जब आप बच्चों का मुस्कराकर या गले लगाकर स्वागत करते हैं तो वे महसूस करते हैं कि आप उनकी परवाह करते हैं, उन्हें लगता है कि उन्हें अपने सामाजिक समूह के *बाहर* भी स्वीकृति मिल रही है।

यह प्रयास केवल एक रणनीति नहीं है, बल्कि जब हम उन बच्चों से प्यार करते हैं जिनके साथ हम काम करते हैं तो यह एक सहज प्रतिक्रिया होती है। औपचारिक *गुड मॉर्निंग, मैडम* के स्थान पर स्नेह के सरल संकेत, चाहे वह एक मुस्कान हो या शुभकामनाएँ, चमत्कार कर जाती हैं। बच्चे यह महसूस करने लगते हैं कि दुनिया उनकी वजह से एक ख़ूबसूरत स्थान है। स्कूल एक ऐसा स्थान बन जाता है जहाँ वे जैसे हैं वैसे ही उन्हें अपनाया जाता है।

सम्मान और गरिमा

मुख्यधारा की संस्कृति में, हाशिए पर रहने वाले बच्चे की भाषा और जीवन को वह दर्जा नहीं दिया जाता है जिसके वे योग्य हैं। हो सकता है कि इसका कारण वह कार्य हो जो बच्चे के माता-पिता करते हैं या वह जहाँ रहता है या वह जो खेल खेलता है – इन सभी को मुख्यधारा की आकाँक्षाओं से कमतर माना जाता है। बच्चे को अपने हाशिए की स्थिति और उसके कारण अपने साथ किए जाने वाले व्यवहार को सहना पड़ता है। उनकी भाषा को भी जॉब-मार्केट के लिए सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। इसके विपरीत, यह अन्तर अक्सर उस सामान्य क्षमता की कमी के चिह्नक या सामाजिक रूप से समझे जाने वाले शॉर्टहैंड होते हैं जिन्हें कई लघु और दीर्घकालिक भौतिक लाभों का संकेतक माना जाता है। इस प्रकार के दृष्टिकोण सम्मान और गरिमा से सम्बन्धित कई मनोवैज्ञानिक परिणामों को जन्म देते हैं।

सम्मान और गरिमा के विभिन्न रूप हैं; इसका सबसे सरल रूप है दूसरे व्यक्ति की भाषा, संस्कृति, जीवन-शैली, पहचान और ज्ञान को समृद्ध और विशिष्ट मानना। बहुभाषी शिक्षणशास्त्र के कई सारे मज़बूत पक्ष हैं जिनका उल्लेख करना यहाँ सम्भव नहीं, लेकिन बच्चे की स्थिति से बातचीत शुरू करना महत्त्वपूर्ण है।

एक ऐसे शिक्षक के रूप में (जो बच्चे की प्रथम भाषा में सहज नहीं है),जब मैं बच्चे की भाषा में एक वाक्य भी बोलती हूँ तो बच्चा मुझे एक अलग ही दृष्टि से देखता है। मानो वह कह रहा हो, 'आप मुझे महत्त्व देती हैं, आप मुझसे बात करना चाहती हैं, आप मेरे साथ जुड़ने की कोशिश कर रही हैं, आप मेरे जीवन का हिस्सा हैं।' मुझे नहीं पता कि बच्चे के दिमाग़ में क्या चल रहा होता है, लेकिन वह मुझे अलग तरह से स्वीकार करता है। इन उदाहरणों में, मैं केवल बच्चे के साथ बात करने की कोशिश कर रही होती हूँ या शायद थोड़ा हँसी-मज़ाक कर रही होती हूँ, लेकिन बच्चा मेरे साथ बातचीत करता है, मुझे

स्वीकार करता है क्योंकि मैंने उसे स्वीकार कर लिया है। कई बार मैं वाक्य का अनुवाद बच्चे की प्रथम भाषा में करके उसे लिख लेती हूँ और जब मैं उसे 'पढ़ती', 'बोलती' हूँ तो बच्चे की आँखों की चमक और उसका मुझे सीधे देखना कि यह क्या हो रहा है– एक बहुत सुन्दर अनुभव होता है।

दूसरे के जीवन को घटिया या श्रेष्ठ माने बिना उसे स्वीकार करने से गरिमा प्राप्त होती है। इसका मतलब बच्चों को अपने जीवन के बारे में जानकारी साझा करने की *अनुमति देना* या *सहन करना* नहीं है बल्कि ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करना है। एक स्पष्ट सन्देश यह होना चाहिए कि उनके जीवन को बातचीत, लेखन और अन्य प्रकार के आदान-प्रदान के माध्यम से कक्षाओं में लाया जा सकता है और लाया जाना चाहिए तथा कोई भी उस पर हँस नहीं सकता। आजकल *मुस्कान*[1] में हमारे शिक्षकों ने रसोई सम्बन्धी प्रयोगों के माध्यम से बच्चों को अँग्रेज़ी शब्दावली सिखाना शुरू कर दिया है। उनके पारम्परिक खाद्य पदार्थों को कक्षा में पकाया जा रहा है।

एक ओर जब हम हाशिए के बच्चे को स्वीकार करते हैं, तो वहीं दूसरी ओर हमें उस महत्ता को कम करना होगा जो पारम्परिक रूप से सवर्णों या उच्च वर्गों को दी गई है और जिसमें से अधिकांश शिक्षक आते हैं। सामान्य मान्यताओं और दृष्टिकोणों को बदलने की ज़रूरत है। उदाहरण के लिए, यह महसूस करना कि मुझे अक्षमता के बिन्दु तक सुरक्षित किया गया है और पैसे न होने पर मैं उसी शहर में दूसरी जगह पहुँचने में असमर्थ हूँ या यह स्वीकार करना कि मध्यमवर्गीय घरों में उतनी ही हिंसा होती है जितनी कि श्रमिक वर्ग के परिवारों में होती है, लेकिन बड़े घर की दीवारें यह सुनिश्चित करती हैं कि पड़ोसियों को पता न चले - तो यह कुछ ऐसे नज़रिए हैं जिन्हें समाज को बदलना चाहिए। फिर, हम कैसे दिखते हैं, इसके बारे में भी पूर्व-कल्पित धारणाएँ हैं। यदि अमीरों के घरों में लगातार पानी न आता होता तो उनके बच्चे शायद उतने साफ़-सुथरे नहीं दिखते जितने वे दिखते हैं और समय पर स्कूल नहीं पहुँच पाते।

यह ऐसी बातें हैं जो मैं अक्सर तब कहती हूँ जब बच्चे अपने अनुभव साझा करते हैं और परिणामस्वरूप ख़ुद की ही उपेक्षा करते हैं। कुछ लोकप्रिय मान्यताएँ जैसे कि पारम्परिक चिकित्सा के बारे में समझे बिना एलोपैथिक चिकित्सा के चमत्कार की श्रेष्ठता को मानना और पारम्परिक चिकित्सा को अन्धविश्वास और पिछड़ा मानकर खारिज करना यह दिखाता है कि ज्ञान को भी आर्थिक वर्ग और सामाजिक समूह के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। सभी मनुष्यों की समानता का विचार हमारी बातचीत के माध्यम से उजागर होना चाहिए।

सीखने की भावना

सीखना मानव मन के लिए ऐसा ही है जैसे एड्रेनलिन का इंजेक्शन लेना। हममें से जिस किसी को भी कुछ सीखने का अवसर मिला है और जो इसके प्रति सचेत है, वह समझ गया होगा कि मैं किस बारे में बात कर रही हूँ। एक संस्था के रूप में स्कूल सीखने का एक स्थान है। फिर भी ज़्यादातर बच्चे वहाँ निष्क्रियता का अनुभव करते हैं।

बच्चे स्वाभाविक रूप से रचनात्मक, बुद्धिमान, समीक्षात्मक और सीखने के लिए तैयार होते हैं, लेकिन स्कूल में उन्हें अक्सर, सार्थक अन्तःक्रिया और सीखने के मौके नहीं मिलते हैं। कक्षा में घण्टों बैठना बहुत अरुचिकर हो जाता है और कक्षा में जो कुछ भी हो रहा है उसे न समझ पाने की भावना से मन में असफलता की भावना आ जाती है, जबकि एक सचेतन बच्चा यह समझने लगता है कि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया, जिस पर अधिकांश कक्षाओं में ज़ोर दिया जाता है, में कोई समस्या है। मुझे आशा है कि शिक्षकों के रूप में हमें यह एहसास होगा कि हालाँकि परीक्षा में सफल होना महत्त्वपूर्ण है और इससे समझौता नहीं करना चाहिए, लेकिन अंक इतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। *सीखना* ही मायने रखता है।

सीखने की यह भावना किसी कौशल या किसी अवधारणा को सीखने या एक नई सोच प्राप्त करने से सम्बन्धित हो सकती है। इस प्रकार, सार्थक रूप से किसी सवाल को हल करने में सक्षम होना, या यह समझना कि जो चीज़ उनके लिए बस एक डिज़ाइन या एक पैटर्न थी, वह वास्तव में एक लिपि है जिसे वे बना सकते हैं या डिकोड कर सकते हैं या यह बात कि वे अँग्रेज़ी में एक पूर्ण वाक्य बोल सकते हैं - यह सारे अनुभव बच्चे को यह समझने में मदद करते हैं कि औपचारिक स्कूल उनके लिए एक अच्छी जगह हो सकती है।

केवल पुस्तकों और ब्लैकबोर्ड पर निर्भर होने की बजाय औपचारिक ज्ञान में सामुदायिक ज्ञान को भी लाने और चीज़ों को करने से बच्चा सीखने की प्रक्रिया में अधिक वास्तविक तरीक़े से शामिल होगा। बीज के अंकुरण की प्रक्रिया को देखना, अपने आसपास के क्षेत्र के पेड़ों को समझना आदि कुछ ऐसे विषय हैं जो जीवन की वास्तविक विषय-सामग्री का निर्माण करते हैं और जिन्हें पारम्परिक शिक्षकों को भी अपनी कक्षा में लाना चाहिए; ज़रूरी नहीं कि बीएड की डिग्री प्राप्त शिक्षक ही ऐसा करें। हमारे स्कूलों का उद्देश्य भी यही वास्तविक अधिगम है जो बच्चे को भी आश्वस्त करता है और यह तय करता है कि उसे यह स्थान अपने लिए ठीक लगता है या नहीं।

बातचीत और संवाद

यथास्थिति पर सवाल उठाने और स्वतंत्र एवं समीक्षात्मक चिन्तन को बढ़ाने की आवश्यकता बहुत महत्त्वपूर्ण है और यही चीज़ मुख्यधारा की स्कूली शिक्षा में कहीं खो गई है। इसलिए हमारे लिए यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि हम बच्चों को बोलने के अवसर दें ताकि वे साझा कर सकें कि वे अपने भीतर, अपने आसपास और दुनिया की विभिन्न चीज़ों के

बारे में क्या महसूस करते हैं। स्थितियों तथा अपने कार्य करने के तरीक़ों का विश्लेषण करने से हमें चिन्तन करने का मौका मिलता है। इसके लिए शिक्षक को प्रश्न पूछना और सुझाव देना चाहिए। वैसे तो इसे किसी भी अवधारणा को पढ़ाते समय अपने शिक्षण में शामिल किया जा सकता है, लेकिन अपने आप में भी यह महत्त्वपूर्ण है। साप्ताहिक रूप से अपने विचारों को साझा करने की व्यवस्था की जा सकती है जिसमें सामाजिक मानदण्डों और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं पर चर्चा की जाए। ऐसा करने से केवल स्वीकार करने और तालमेल बैठाने की बजाय सोचने और मूल्यांकन करने के बाद कार्य करने की संस्कृति विकसित हो पाएगी।

मुझे ध्यान आती है अपनी एक कक्षा जहाँ हम चर्चा कर रहे थे कि हाशिए के समुदायों के बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा क्यों महत्त्वपूर्ण है और उन्हें इसे क्यों नहीं छोड़ना चाहिए। बच्चों ने कुछ बड़ा हासिल करने की इच्छा के दृष्टिकोण से बातचीत शुरू की और फिर वे हाशिए के समुदायों की गरिमा को फिर से हासिल करने और सवर्ण लोगों को यह दिखाने की बात करने लगे कि किसी विशिष्ट समुदाय का बच्चा क्या कुछ करने में सक्षम है। इसके बाद यह विचार सामने आया कि हममें से हर एक अद्वितीय है और हम उन अलग-अलग रास्तों पर अपने जीवन को चलाने की कोशिश कर सकते हैं जो हमारे लिए व्यक्तिगत रूप से ठीक बैठें और शिक्षा के माध्यम से हमारे लिए अधिक विकल्प खुलेंगे।

महिलाओं का काम और स्थिति, जाति-पदानुक्रम, क्रोध और दर्द की भावनाएँ - ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका अवलोकन

बच्चे नहीं करते हैं और जिसे वे समझ नहीं सकते। वे लगातार राय बनाते रहते हैं और अनजाने में इन रायों को व्यवहार में परिवर्तित करते रहते हैं। हमें नैतिक शास्त्र के पाठ नहीं चाहिए; हमें तो केवल ग़ैर-निर्णायक और खुले विचार-विमर्श की आवश्यकता है।

अभिव्यक्ति

सभी मनुष्य अनुभवों, यादों और भावनाओं का पुलिन्दा हैं। यही सब है जो हमें इन्सान बनाते हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है जो आपके जीवन में होता है और आपके साथ रहता है जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता है। वह मृत्यु, दुर्व्यवहार, दर्द, प्रेम कुछ भी हो सकता है। वयस्कों के रूप में हम ऐसे भड़काऊ/तनावपूर्ण विषयों या शब्दावली को सामने लाने में संकोच करते हैं जो अपमानजनक हैं। लेकिन हमें कक्षा में इन्हें सक्रिय रूप से लाने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि यह बच्चे के मन और स्मृति का हिस्सा हैं। हमें उनके साथ इन विषयों पर इस तरह से चर्चा करनी चाहिए जो अहिंसक और ग़ैर-अपमानजनक हों। बच्चे के शैक्षिक स्तर या जिस विषय को हम पढ़ा रहे हैं, उसके आधार पर, हम उस रूप को भी संशोधित कर सकते हैं जिसमें अभिव्यक्ति अपेक्षित है। ड्राइंग, लेखन, बोलना, अभिनय के माध्यम से साझा करना आदि अभिव्यक्ति के रूप हैं, जिन्हें सभी स्थितियों में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यह असंरचित हो सकता है या इस प्रकार के सवालों से शुरू किया जा सकता है कि 'कल रात आपने क्या किया? ऐसा क्या है जिससे आपको डर लगता है? आपने नया दोस्त कैसे बनाया?' अभिव्यक्ति और चर्चा, व्यक्त करने वाले और सुनने वाले के लिए विभिन्न तरह से कार्य करती है।

कक्षा के बाहर कदम रखना

परिचित चीज़ों की खोज करना

जब हम निरीक्षण करने, चर्चा करने और सीखने के लिए एक समूह के रूप में कक्षा से बाहर किसी परिचित या नई जगह में कदम रखते हैं तो ऐसी स्थिति हमें सीखने के लिए सक्षम बनाती है। यह अफसोस की बात है कि अब अधिकांश अन्तःक्रिया कंप्यूटर और फोन द्वारा हो रही है, लेकिन फिर भी हमारे द्वारा बनाए गए अवसर हमें अपने स्वयं के नज़रिए से लोगों और प्रकृति को समझने में मदद करेंगे।

कई बार मैं अपनी कक्षा की लड़कियों को फोन के बिल का भुगतान करने या पत्र पोस्ट करने के लिए साथ ले जाती हूँ। इस तरह से सार्वजनिक स्थान में अपने शिक्षक के साथ घूमने वाले बच्चों के लिए और शिक्षक के लिए भी, उनका अनुभव नई अन्तर्दृष्टि लेकर आता है। बच्चों के इलाकों और मोहल्लों में घूमना और उनसे वहाँ की जगहों के बारे में बताने या उनका परिचय करवाने के लिए कहने से हमें स्थान के बारे में नई अन्तर्दृष्टि और परिप्रेक्ष्य मिलता है। इस प्रयास में समुदाय के बुजुर्गों को भी प्रोत्साहित किया जा सकता है।

हम यह भी सीखते हैं कि चाहे जंगल हो या सड़क, बच्चों को बन्द कमरे की तुलना में वास्तविक दुनिया में अपने ज्ञान और समझ के तरीक़ों को साझा करना अधिक प्रामाणिक लगता है।

कहानियों और कहानी की किताबों के माध्यम से सांस्कृतिक सीमाओं को पार करना

हमारी अधिकांश पाठ्यपुस्तकों में अभी भी दिलचस्प कहानियों का अभाव है जो हमें भारत और/या दुनिया के लोगों की विविध संस्कृतियों को समझने और उनके साथ जुड़ने में मदद कर सकें। चूँकि पाठ्यपुस्तकों में 'पाठ' केवल उन सवालों को ध्यान में रखते हुए पढ़ाए जाते हैं जो अध्याय के बाद पूछे जाते हैं और अक्सर जीवन-मूल्य पर आधारित होते हैं; वे विशेषाधिकार प्राप्त बच्चे के अनुभवों का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनमें बचपन की मध्यमवर्गीय धारणाओं को ध्यान में रखा जाता है; इसलिए हाशिए के युवाओं के जीवन का प्रतिनिधित्व और सम्मान करने वाली विभिन्न कहानियों का महत्त्व और प्रासंगिकता पूरी तरह से खो गई है। शिक्षाविद् कृष्ण कुमार का नुस्ख़ा है – प्रतिदिन एक कहानी। हम ख़ुद यह पता लगा सकते हैं कि हमारे स्कूल के लिए सबसे अच्छी बात कौन-सी रहेगी।

बच्चों की वास्तविकताओं की पुष्टि करने वाली कहानियाँ उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी कि वे कहानियाँ जो हमें एक अलग प्रकार की वास्तविकता वाले जीवन में झाँकने में मदद करती हैं। जब भी हम कोई ऐसी कहानी सामने रखते हैं जिसमें भीड़ की वजह से किसी बच्चे को चोट लगी हो या अधिकारों के उल्लंघन के बारे में कोई बात हो तो पाठक हमेशा उस व्यक्ति को समझने की कोशिश करता है। जब हम 8 साल के बच्चे को पाकिस्तान के ख़िलाफ़ बोलते हुए सुनते हैं (इस देश के लिए, जिसे वे 'पश्चिम छोर पर दुश्मन' कहते हैं, बच्चों द्वारा महसूस की जाने वाली दुश्मनी, उनके साथ बातचीत में साफ़ दिखाई देती है), तो मन में यह सवाल उठता है कि क्या यह नफ़रत गहरी होती या ख़त्म होती अगर दुश्मनी या इतिहास के विकृत संस्करणों पर पाठ पढ़ने की बजाय सीमाओं पर रहने वाले बच्चों के बारे में कहानियाँ पढ़ी गई होतीं। *मुस्कान* के पुस्तकालयों में हम सचेत रूप से उन पुस्तकों को रखने की कोशिश कर रहे हैं जो विभिन्न वास्तविकताओं को प्रस्तुत करती हैं और साथ ही उन पुस्तकों को प्रकाशित भी करते हैं जो हमारे बच्चों की वास्तविकताओं को व्यक्त करती हैं।

विभिन्न भावनात्मक ज़रूरतों को पहचानना

हम यह देख सकते हैं कि हाशियाकृत पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए 12 साल की औपचारिक शिक्षा प्राप्त करना एक कठिन काम है। यदि प्रयास की गणना की जा सकती हो तो शायद हाशिए के बच्चे को अपने जीवन-प्रवाह को बदलने के लिए एक विशेषाधिकार प्राप्त पृष्ठभूमि के बच्चे की तुलना में कम से कम 50 गुना अधिक प्रयास करने की आवश्यकता होती है, उस बच्चे की तुलना में जिसकी दिशा पहले से ही उसके जन्म के कारण निर्धारित है। हम अक्सर सुनते हैं कि एक दृढ़ संकल्पी बच्चा सभी बाधाओं को पार कर सकता है, लेकिन मैं यह मानना पसन्द करती हूँ कि यह हमारा दृढ़ संकल्प और लचीलापन है न कि बच्चे का, जिसका परीक्षण किया जा रहा है।

सीखने में शिक्षकों की भूमिका

हालाँकि उपर्युक्त प्रयासों के द्वारा कुछ परिस्थितियों को हल किया जा सकता है, लेकिन हो सकता है कि हमारे प्रयास और संवेदनशीलता में कमी की वजह से बच्चा अपनी पढ़ाई जारी न रखे। यूँ तो अधिकांश बच्चों के लिए शिक्षक के साथ एक भावनात्मक बन्धन और विश्वास महत्त्वपूर्ण होता है, लेकिन कुछ के लिए, यह सबसे महत्त्वपूर्ण कारक बन सकता है। ऐसे बच्चों को कुछ लक्षणों के माध्यम से पहचाना जा सकता है: वे कक्षा में दूसरों के साथ घुलते-मिलते नहीं; चर्चा में भाग लेने से बचते हैं; हो सकता है कि वे घर में किन्हीं मुश्किलों से गुज़र रहे हों; या कक्षा के प्रमुख समूह द्वारा बहिष्कृत महसूस कर रहे हों।

यह एक व्यक्तिगत अपेक्षा है और इसके लिए बहुत सारी मेहनत करनी होगी; लेकिन मेरे अनुसार यह हमारे उस काम का हिस्सा है जिसे हमने शिक्षकों के रूप में ख़ुद चुना है। विशेष रूप से उन बच्चों के शिक्षक के रूप में जिनके भाग्य में कोई परामर्शदाता (काउंसलर) या ऐसी माँ नहीं होती जो अपना काम छोड़ सके या मातृत्व अवकाश का लाभ उठाकर उनकी देखभाल कर सके या ऐसा परिवार नहीं होता जो छुट्टियों में उनके साथ गुणवत्तापूर्ण समय बिताए। मैं यह नहीं कह रही हूँ कि बच्चे प्यार से वंचित हैं, लेकिन कमज़ोर वर्ग के परिवार जीवन में नए और कठिन रास्तों पर चलने के साथ-साथ अपने बच्चों को भावनात्मक शक्ति नहीं प्रदान कर पाते। इन परिवारों और समुदायों के लिए औपचारिक शिक्षा एक ऐसा मार्ग है जिस पर वे कभी चले ही नहीं। अगर मैं हाशिए के बच्चे के साथ काम करना चुनती हूँ, तो मुझे यह भी समझना होगा कि उस बच्चे को मुझसे समर्थन चाहिए।

वास्तविक जीवन की कहानियाँ

धर्मेन्द्र एक ओझा गोंड बच्चा है जिसके छह भाई-बहन हैं। उनकी माँ उनसे प्यार करती है, उनका ध्यान रखती है। वे सड़क के किनारे रहती हैं और उनका जीवन अपनी मूल आदिवासी जड़ों से इस कदर विस्थापित है कि उसकी कल्पना ही की जा सकती है। धर्मेन्द्र ने आठवीं कक्षा तक बड़ी मेहनत से पढ़ाई की और फिर वह सड़कों पर रद्दी-कूड़ा चुनने के काम में लग गया क्योंकि यही उसके परिवार की आय का एकमात्र स्रोत था। मेरा मानना है कि अगर मैं उसकी मौसी की तरह हो सकती तो उसके जीवन की दिशा अलग ही होती। लेकिन मैं शायद ज़्यादा-से-ज़्यादा एक सहानुभूतिपूर्ण शिक्षिका थी।

पारधी लड़की अंजलि का भी यही हाल था। वह अपने लिए

एक अलग से जीवन का सपना देखती थी और हमेशा घर से दूर भागती रहती, लेकिन एक बीमारी के कारण वह सिर्फ़ 8 साल की उम्र में चल बसी। मुझे लगता है कि मैं एक वयस्क के रूप में वहाँ थी तो सही, लेकिन उतनी नहीं जितने की उसे ज़रूरत थी। बच्चों की ज़रूरतें और व्यक्तित्व अलग-अलग होते हैं, कुछ पर ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत होती है, कुछ पर कम। वयस्कों के रूप में, हमें उन बच्चों तक पहुँचना होगा जिन्हें हम अपने जीवन में अपनी मर्ज़ी से लाते हैं, जन्म से नहीं।

हाशिए के समुदायों का हिस्सा होने के नाते, अपमानजनक स्थितियों में रहना और/या भेदभाव का जीवन जीना अधिगम में वाकई बाधा हो सकती है। 12 साल की स्कूली शिक्षा के रास्ते से गुज़रना, फिर उच्च शिक्षा के संस्थानों तक पहुँचने से पहले 3 + साल की स्नातक स्तर की पढ़ाई, यह सब बच्चों की हिम्मत की निरन्तर परीक्षा लेते हैं। संस्थागत रूप से उनके अलगाव और उनके प्रति होने वाले भेदभाव आदि बताते हैं कि हमें इस बात पर तत्काल ग़ौर करना होगा कि हमारे संस्थानों द्वारा किस प्रकार सक्रिय रूप से भेदभाव किया जाता है ।

प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के रूप में, हमारा व्यवहार बच्चों को बाहर धकेलता है या उन्हें भीतर खींच लाता है – इस बारे में हम सचेत हो सकते हैं और ख़ुद को बदल सकते हैं। यदि हम इस सोच को बदलते हैं कि हमारे स्कूल और सीखने के स्थान तटस्थ हैं, बाक़ी समाज से कटे हुए हैं, जाति और वर्ग के प्रति जागरूक नहीं हैं, योग्यता उन्मुख हैं। साथ ही यदि हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि स्कूल अक्सर उन सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भों को सक्रिय रूप से दोहराते हैं, जिनमें वे स्थित हैं, तो इसका मतलब यह होगा कि हमें अपनी स्कूली शिक्षा के प्रचलित तरीकों (schooling practices) की प्रासंगिकता पर पुनर्विचार करने और विभिन्न प्रकार की समर्थन-प्रणालियों (support systems) की कल्पना करने की ज़रूरत है ताकि एक ऐसे लोकतांत्रिक स्थान का विकास किया जा सके जो विविध प्रकार की वास्तविकताओं को सम्मिलित करे जिससे कि वास्तव में हर बच्चा सीखने में सक्षम हो पाए।

Going to School Alone; Author: Simran Uikey, Illustrator: Kruttika Susarla; Muskaan (2019)

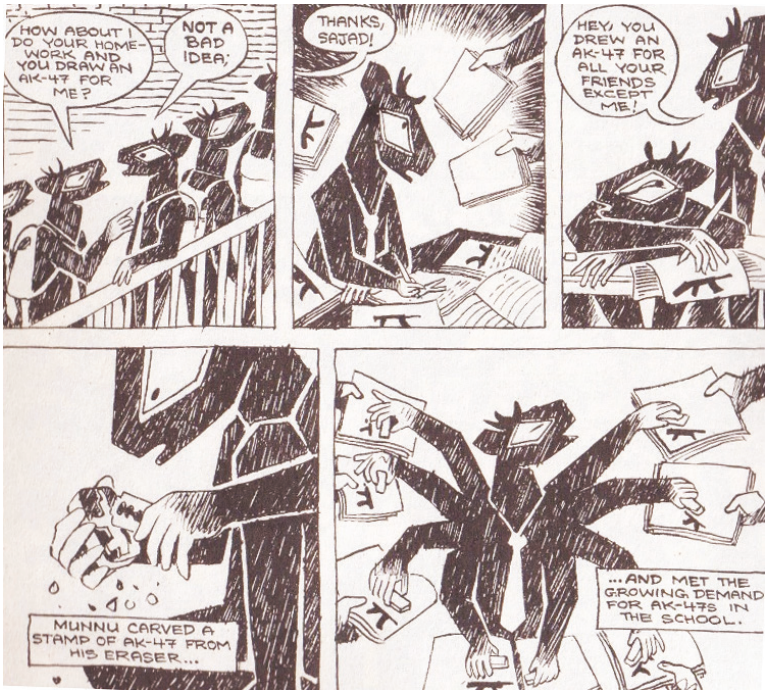

Munnu: A boy from Kashmir; Graphic Novel by Malik Sajad; Fourth Estate (2015)

[1]मुस्कान एक ग़ैर-लाभकारी, ग़ैर-सरकारी संगठन है जो भोपाल, मध्य प्रदेश में हाशिए पर रहने वाले समुदायों के साथ काम कर रहा है।

शिवानी तनेजा 1997 से मुस्कान के माध्यम से शहरी क्षेत्रों में बच्चों और हाशिए के समुदायों के साथ काम कर रही हैं। मुस्कान का मानना है कि शिक्षा को बच्चों के जीवन और वास्तविकताओं से अलग नहीं किया जा सकता है। बच्चों के साथ बातचीत ने कक्षाओं के अन्दर उनके काम और विमुक्त जनजातियों के मुद्दों के बारे में मार्गदर्शन किया है। वे देश में यौन हिंसा और राज्य द्वारा दमन के मुद्दों पर होने वाली प्रतिक्रिया में महिला समूहों के साथ सक्रिय रहती हैं। उनसे muskaan.office@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल